अब जो कुछ खर्च होता है वह प्रायः स्वाहा ही हो जाता है।

२३३. प्रश्न- इसका कारण क्या है?

उत्तर- फैशनने सबको तबाह कर दिया है। इस सारे अनर्थका कारण हमारी भोगपरायणताकी वृद्धि है। पहले जो कुछ होता था उसमें एक संयम था।

२३४. प्रश्न- कपड़ोंमें आप किसे व्यर्थ खर्च कहते हैं?

उत्तर- अंग्रेजोंके संगसे पतलून, कोट, हैट आदि आये परन्तु अब स्वराज्य मिलनेपर भी हमारा यह विदेशी मोह छूटा नहीं है--यह खेदकी बात है। गरमीके मौसममें भी पैरोंमें मोजे, पतलून, बदनपर तीन-चार कपड़े, कोट आदि आ गये हैं। तब बताइये, खर्च कैसे नहीं बढ़ेगा? खर्च तो तब घटेगा जब इतनी वस्तुओंका व्यवहार नहीं किया जायगा।

२३५. प्रश्न- विवाह-सगाई आदि अवसरोंपर नये-नये ढंगसे खर्च किया जाता है तब ऐसे वातावरणमें कैसे बचें?

उत्तर- विवाह-सगाई आदिमें जो अनाप-शनाप खर्च होता है उसे रोकनेका बहुत ही शीघ्र प्रयत्न होना चाहिये। अधिकतर लोग झूठी कीर्ति या बड़ाईके फेरमें पड़कर ही ज्यादा खर्च किया करते हैं, इस बड़ाईका रूप बदलकर खर्च कम करनेवालेकी बड़ाई करें और उसीके कार्यको अच्छा बतावें। इससे बड़ाईके लोभी भी कम खर्च करने लगेंगे।

२३६. प्रश्न- आजकल विवाहमें जिस तरह खर्च होता है उसपर आपका क्या कहना है?

उत्तर- आजकल विवाह-शादीमें तो जो अनर्थ हो रहा है वह बड़ा ही रोमाञ्चकारी है। खर्चकी भयानकताके कारण लड़कियोंका विवाह नहीं हो पाता और अच्छे-अच्छे परिवार इसके लिये दुःखी हो रहे हैं।

२३७. प्रश्न- हमलोग व्यर्थ खर्च रोकनेके लिये क्या करें?

उत्तर- अपना, समाजका और देशका लौकिक-पारलौकिक हित चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यका यह कर्त्तव्य है कि वह खर्च घटाये, जीवनमें सब ओर सादगीका व्यवहार करे, व्यक्तिगत और समाजगत धनकी फिजूलखर्चीको दृढ़ता और बलके साथ नासमझीसे होनेवाली बदनामीको सहकर भी रोके। अपने यहाँ विवाह-सगाई आदिमें बहुत ही

कम धन व्यय करके लोगोंके मनसे प्रतिष्ठाके मोहको निकाल दें। बुद्धिमानोंको चाहिये कि कम खर्च करनेवालोंकी प्रशंसा करके उनका उत्साह बढ़ाया करें।

करें न संग्रह कभी वस्तुएँ, बनें न असत्-अभाव-दरिद्र।
फैशन-व्यसन त्याग रक्खें जीवनको सादा, शान्त, पवित्र॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३६७)

सिनेमा

२३८. प्रश्न- प्रत्येक मनुष्यको मनोरञ्जन चाहिये और सिनेमा इसका सरल साधन है। फिर क्यों छोड़े?

उत्तर- मनोरञ्जनका प्रश्न इस समय बहुत महत्त्वका हो गया है। धर्म-कर्म खोकर, शील-संकोच और लज्जा-मर्यादाका नाश करके भी 'मनोरञ्जन' करना है। इस प्रकारका यह महारोग बहुत नवीन है, पर यह बहुत व्यापक हो गया है।

२३९. प्रश्न- फिर क्या किया जाये?

उत्तर- क्या यह वाञ्छनीय है कि मनोरञ्जनके नामपर सिनेमाके इस पापको यों ही उत्तरोत्तर बढ़ने दिया जाय और हमारा तरुण समाज उसका बुरी तरह शिकार होकर अपने जीवनसे हाथ धो बैठे और हमारे राष्ट्रका भविष्य अन्धकारमय हो जाय?

२४०. प्रश्न- सिनेमासे क्या होगा?

उत्तर- सिनेमाके द्वारा समाजमें नर-नारियोंका जिस अनुपातमें घोर पतन हो रहा है, वह यों ही होता रहा तो सदाचार और नैतिकता नामकी कोई वस्तु ही नहीं रह जायगी।

२४१. प्रश्न- क्या मनोरञ्जनकी बात धोखा देने की है?

उत्तर- 'मनोरञ्जन तथा कला' तो धोखा देनेकी चीज है। जैसे शराबके गुण बताकर शराबके व्यसनको दृढ़ कर दिया जाता है, वैसे ही वर्तमान सिनेमाओंके ये नाम तो इस दुर्व्यसनकी वृद्धिके लिये ही रक्खे गये मालूम होते हैं।

२४२. प्रश्न- सिनेमासे क्या बुराइयाँ आयी हैं?

उत्तर- सिनेमासे लोगोंने चोरीकी नयी-नयी कलायें सीखीं, डाके डालने सीखे, शराब पीना सीखा, निर्लज्जा सीखी और भीषण व्यभिचार सीखा। सिनेमाके कारण हमारे युवक-युवतियोंमें किस प्रकार यथेच्छाचार बढ़ रहा है--इसके कई सच्चे उदाहरण हमारे सामने हैं।

२४३. प्रश्न- किसीको सिनेमा छोड़नेको कहें तो कोई माननेको तैयार नहीं है?

उत्तर- इससे सिनेमाके प्रभावकी गहराईका पता लगता है और यह भी पता लगता है कि हमारी मनोवृत्ति किस प्रकारसे बिगड़ती जा रही है। मनुष्यकी मनोवृत्ति बदल जानेपर जब उसकी बुद्धि बुरेको भला मान लेती है, तब बुराई छूटनेमें बड़ी कठिनता होती है।

२४४. प्रश्न- तब आपकी क्या राय है?

उत्तर- बहुत सोच-विचार करनेके बाद यह विनीत प्रार्थना है कि लोक-परलोकमें कल्याण चाहनेवाले नर-नारियोंको सिनेमा बिल्कुल नहीं देखना चाहिये और न उनमें देखनेकी शौक पैदा करनी चाहिये। कम-से-कम परमार्थके मार्गमें तो यह बहुत बड़ा विघ्न है।

दोष-दर्शन

२४५. प्रश्न- दोष-दर्शनसे क्या होता है?

उत्तर- जिसमें दोष दिखायी देते हैं उसमें हमारा द्वेष हो जाता है। द्वेष ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-ही-त्यों उसके गुण भी दोष दीखने लगते हैं, दोष-दर्शनसे द्वेष और द्वेषसे दोष-दर्शनकी वृद्धि होनेसे आगे चलकर हमारी दृष्टिमें दोषदर्शनकी इतनी बुरी आदत पड़ जाती है कि फिर हमें बड़े-से-बड़े सद्‌गुणी पुरुषमें भी दोष ही दिखलायी देने लगते हैं। फलतः सब जगह दोष ही दोष देखते रहनेसे हमारा प्रेमभाव नष्ट हो जाता है और हम नित्य द्वेषकी आगमें जलते रहते हैं।

२४६. प्रश्न- दूसरोंमें दोष दिखायी दे तो क्या करें?

उत्तर- किसीमें दोष देखते हो तो इससे सिद्ध होता है कि तुममें वह दोष है। इसलिये तुम पहले अपने दोषोंको देखो, उनसे घृणा करो,

उनसे द्वेष करो और उनका नाश करनेके लिये प्रयत्नमें लग जाओ।

२४७. प्रश्न- दोषोंकी चर्चा क्यों नहीं करनी चाहिये?

उत्तर- दोषोंकी चर्चा करनेवाला दोषोंका वितरण करता है। जिस चीजका हम बार-बार चिन्तन करेंगे, चर्चा करेंगे वह हमारे अन्दर आ जायगी। आगेका जीवन पापमय हो जाता है।

२४८. प्रश्न- जिसमें दोष हो उसकी निन्दा क्यों नहीं करनी चाहिये?

उत्तर- असलमें निन्दा किसीकी भी नहीं करनी चाहिये। यदि निन्दनीय कुछ है तो अपने दोष, अपने पाप हैं।

२४९. प्रश्न- मेरे अंदर बहुत दोष हैं। उन दोषोंके कारण मैं बहुत दुःखी रहता हूँ, मिटानेका प्रयास भी करता हूँ पर मिटते नहीं। क्या करें?

उत्तर- जिसको अपने दोष दिखते हैं, भयंकर रूपसे दिखते हैं, जो दोषोंके कारण दुःखी रहता है, मिटानेका प्रयत्न भी करता है, पर सर्वथा नाश नहीं कर सकता, वह तो बड़ा भाग्यवान् है। श्रीभगवान्का स्मरण ऐसी आग है जो सारे दोषोंको जला देती है।

२५०. प्रश्न- अपने दोषोंको मिटानेका पक्का साधन क्या है?

उत्तर- नित्य-निरन्तर आत्म-निरीक्षण करता रहे और घंटे-घंटेमें बड़ी सावधानीसे यह देखता रहे कि उतने समयमें मन, वाणी और शरीरसे मेरे द्वारा कितने और कौन-कौनसे दोष बने हैं।

२५१. प्रश्न- क्या दूसरोंके दोष-चिन्तनके साथ गुण-चिन्तन भी नहीं करना चाहिये?

उत्तर- दूसरोंके दोष-चिन्तन करनेसे द्वेष होगा और गुण-चिन्तन करनेसे आसक्ति होगी। ये दोनों ही जगत्के बन्धनकारक हैं।

२५२. प्रश्न- क्या किसीके सुधारके लिये भी दोष नहीं देखना चाहिये?

उत्तर- किसीके भी दोष देखकर, उसे बताकर या उसकी कटु आलोचना करके उसे ठीक नहीं कर सकते।

२५३. प्रश्न- निर्दोष कैसे बनें?

उत्तर- जिसको अपने दोष दीखते हैं, वही दोषोंसे मुक्त हो सकता है। जिसको अपने दोष नहीं दीखते या जो दोषोंको गुणरूपमें देखता है, वह कभी दोषमुक्त नहीं हो सकता।

२५४. प्रश्न- दूसरोंमें दोष क्यों दिखायी पड़ता है?

उत्तर- (१) तुम अपने दोषों, दुर्विचारों और दुर्भावनाओंकी ओर नहीं देखते, इसीसे तुम्हें दूसरोंमें दोष दिखायी पड़ते हैं।

(२) इसका प्रधान कारण है--हमारी दोष-दृष्टि। हमारी दृष्टिमें ही दोष भरे हैं, इसीसे हमें सभीमें दोष-ही-दोष दिखायी देते हैं।

२५५. प्रश्न- दोष-दृष्टिका नाश कैसे हो?

उत्तर- दोष-दृष्टिका नाश होता है गुण-दृष्टिसे। जहाँ गुण-दृष्टि हुई कि हमें सबमें गुण-ही-गुण दिखायी देने लगेंगे।

२५६. प्रश्न- किसी दूसरेमें दोष दीखे ही नहीं इसका क्या उपाय है?

उत्तर- तुम निरन्तर मनसे भगवान्‌का चिन्तन करो, विचार तथा भाव-दृष्टिकी सहायतासे सबमें सर्वत्र सदा भगवान्‌को ही आँखोंसे देखो। उनको सुख पहुँचाने तथा उनकी सेवा करनेमें ही अपने सारे बाह्य जीवनको लगा दो। फिर किसीका दोष नहीं दीखेगा।

२५७. प्रश्न- क्या किसीके दोष शुद्ध मनसे बताना निन्दा कहलायेगा?

उत्तर- 'निन्दा' उसीको कहते हैं, जिसमें किसीके दोष बताकर उसे दूसरोंकी नजरसे गिराया जाता है। अवश्य ही अन्तःकरणके बड़े सौहार्दके साथ किसीके हितके लिये उसके दोष बताना निन्दा नहीं है।

२५८. प्रश्न- यदि मैं किसीकी निन्दा करूँ तो मेरे पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर- इससे तुम्हारी जबान गन्दी होगी, तुम्हारी वासना मलिन होगी। जिसकी निन्दा करते हो, उससे वैर होनेकी सम्भावना रहेगी और चित्तमें कुसंस्कारोंके चित्र अंकित होंगे।

उत्तम वह जो पर-दोषों को, अपने गुण देकर ढकता।
मध्यम वह, जो पर-दोषों को सहन सहज नहीं कर सकता।
अधम मनुज, जो पर-दोषों को सहन नहीं है कर पाता।
नीच मनुज, जो पर-दोषों को बढ़ा-बढ़ाकर है गाता।
सबसे नीच, स्वयं गढ़-गढ़कर पर-दोषों को बतलाता॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४५७)

वातावरण

२५९. प्रश्न- स्थान विशेषके वातावरणका प्रभाव क्यों पड़ता है?

उत्तर- मनुष्य जो कुछ भी शरीरसे कर्म करता है, वाणीसे शब्दोच्चारण करता है और मनमें चिन्तन करता है, उसका प्रभाव वहाँके वायुमण्डलपर पड़ता है, उसके परमाणु वहाँके वायुमण्डलमें न्यूनाधिकरूपसे फैल जाते हैं, जो उस वायुमण्डलमें रहनेवाली प्रत्येक वस्तुपर अपना प्रभाव डालते हैं।

२६०. प्रश्न- अपने आस-पासका वातावरण सात्त्विक कैसे बने?

उत्तर- मनमें सदा सात्त्विक शुद्ध आदर्श विचारोंका पोषण करो और उन्हींको बढ़ाओ। ऐसा करनेसे तुम्हारे आस-पासका वायुमण्डल सात्त्विक बन जायगा।

२६१. प्रश्न- महात्माओंकी सन्निधिमें निवासमात्रसे परम लाभ माना गया है। ऐसा क्यों?

उत्तर- जिनका अन्तःकरण केवल भगवद्भावोंसे भरा होता है, उनके अन्दरसे निकली हुई भगवद्भावोंकी किरणें सारे वायुमण्डलमें फैलकर वहाँ सर्वत्र सदाचार, साधुशीलता और भगवत्प्रेमकी ज्योति छिटका देती है और उसके प्रकाशको पाकर पामर प्राणी भी कृतार्थ हो जाते हैं।

२६२. प्रश्न- बुरे वातावरणमें रहनेका क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर- बुरे वातावरणमें रहते-रहते चित्त बुरा हो जाता है, फिर उसमें बुरे संकल्प उठते हैं और उन संकल्पोंको वह जगत्‌में फैलाकर दूसरोंको भी बुरा बनाता है।

मन सत-संगति नित कीजै।
संत-मिलन त्रय-ताप, नसावन, संत-चरन चित दीजै॥
संतन निकट नित्यप्रति जइये, हरि-नामामृत पीजै।
संतनि सकल भाँति नित सेइय, सब बिधि मुदित करीजै॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४२९)

चोरी

२६३. प्रश्न- हमलोग तो प्राय: दूसरेकी वस्तु छिपाकर ले लेनेको ही चोरी समझते हैं। क्या चोरी अन्य कुछ भी है?

उत्तर- चोरीके कई प्रकार होते हैं--

१- शासनके द्वारा प्रजाके न्याय अधिकारोंका हरण किया जाना।

२- प्रजापर अनुचित कर लगाकर अपना स्वार्थ-साधन करना।

३- न्यायाधीशों तथा अधिकारियोंका रिश्वत लेकर अन्याय करना।

४- अवैध कार्य करनेवालोंकी सहायता करना।

५- बड़े-बड़े उद्योगोंके (प्रतिष्ठानोंके) संचालकोंका झूठे कागजात बनवाकर शेयर-होल्डरोंके न्याय-नफेको स्वयं हड़प लेना।

६- मजदूरोंको पेटभर मजदूरी न देना।

७- मजदूरोंका वेतन लेकर भी स्वीकृत कार्य पूरा समय देकर सुचारुरूपसे न करना।

८- नाप-तौल या संख्यामें अधिक ले लेना या कम देना।

९- किसीको रिश्वत देकर अन्यायपूर्वक लाभ उठाना।

१०- एक चीजमें दूसरी चीज मिलाकर देना।

११- चोरीका माल खरीदना।

१२- अधिक ब्याज लेकर गरीबोंकी सम्पत्तिका हरण करना।

१३- झूठे दस्तावेज लिखना-लिखवाना।

१४- लोभी वकीलोंका रुपयोंके लोभसे अनुचित सलाह देकर मुकद्दमेमें लड़वाना।

१५- डाक्टरों-वैद्योंका लोभवश रोगीको झूठे रोग बढ़ाकर रोग बतलाना।

१६- रिश्वत देकर दूसरोंकी अपेक्षा अधिक कीमतपर टेन्डर पास करवा लेना। आदि

ये सभी चोरीके अपराधी होते हैं।

२६४. प्रश्न- इस प्रकारकी चोरियाँ आजकल बढ़ क्यों रही हैं?

उत्तर- इस प्रकारकी चोरियाँ आजकल बहुत बढ़ गयी हैं और बढ़ती ही जा रही हैं। लोगोंके मनोंसे इस प्रकारके कार्योंसे पापबुद्धि या घृणा निकल गयी है और वे इसमें बुद्धिमानी या गौरवका अनुभव करते हैं।

२६५. प्रश्न- आजकल तो इन्हें चतुराई माना जाता है ?

उत्तर- यह सबसे बुरी बात है कि समाज आज इन पापभरी क्रियाओंको चतुरता मानने लगा है और ऐसी चोरी करके धनी बने हुए लोगोंका समाजमें बड़ा आदर-सम्मान होता है। इससे स्वाभाविक अन्य लोगोंके मनमें इस प्रकार धनी बनकर आदर-सम्मान पानेकी कामना होती है।

२६६. प्रश्न- ऐसी चोरियाँ पकड़ी क्यों नहीं जाती ?

उत्तर- ऐसी चोरियाँ-डकैतियाँ प्रायः पकड़ी नहीं जाती। ये प्रायः होती हैं उन्हीं लोगोंके द्वारा जो समाजमें ऊँची रहन-सहनवाले, सभ्य, शिक्षित, अधिकारी, न्यायकारी, धर्मात्मा या देशके भक्त कहे जाते हैं। जितने ही अधिक कानून बनते हैं उतना ही चोरी-डकैतियोंकी नयी-नयी सफल क्रियाओंका आविष्कार हो जाता है। कानून किताबोंमें रहता है और कानून बनवाने-मनवानेवाले तथा कानून माननेवाले लोग आपसमें स्वार्थ-साधनका समझौता कर लेते हैं।

२६७. प्रश्न- क्या रुपयोंके अलावा अन्य चोरी भी होती है ?

उत्तर- साहित्यिक चोरी भी कम नहीं होती। मन्दिरों, कीर्तनों, आध्यात्मिक नामपर तथा उनमें भी कितनोंमें ही चोरी चलती है। जो लोग कपड़े, खानेकी चीजें आदि अनावश्यक संग्रह करते हैं, विवाह-शादियोंमें अनाप-शनाप वस्तुओंका अपव्यय करते हैं, वे भी समाजकी बड़ी चोरी करते हैं।

२६८. प्रश्न- क्या घरकी चीजको छिपाकर रख लेना या खा लेना भी चोरी है ?

उत्तर- चोरी तो वह भी है जिसमें घरके लोगोंसे छिपकर घरकी चीजको अपनी पेटीमें रख लिया जाता है और खाने-पीनेकी चीज हो तो उसे छिपाकर खा-पी लिया जाता है।

२६९. प्रश्न- आप तो आजकल होनेवाली सभी चीजोंको चोरी कहते हैं तब आपकी चोरीकी परिभाषा क्या है ?

उत्तर- किसी भी कारणसे या किसी भी नामसे परस्वापहरणकी जो कुछ भी कामना, चेष्टा या क्रिया होती है, वह सभी चोरी और पाप है। इन सभी प्रकारकी चोरियोंसे बचना चाहिये।

२७०. प्रश्न- क्या अपनी सच्ची कमाईको इच्छानुसार खर्च करना भी चोरी है?

उत्तर- श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदके वचन है युधिष्ठिरके प्रति- 'मनुष्योंका अधिकार या हक उतने ही धनपर है, जितनेसे उनके पेट भर जायँ। इससे अधिकको जो अपना मानता है, वह चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये।'

यह केवल अस्तेय-व्रतका ही लक्षण नहीं है, यह वह सिद्धान्त है जिसका पालन करनेपर विश्वकी सारी आर्थिक विषमताका नाश हो जाता है।

२७१. प्रश्न- ऐसी बात तो आजकलके कट्टर साम्यवादी भी नहीं कहते?

उत्तर- हमारे भारतीय ऋषियोंका यही साम्यवाद है। इसमें कहीं हिंसा-प्रतिहिंसा नहीं है और सबको सबकी न्याय प्राप्त अर्थ-सम्पत्ति और सुख-सुविधा मिल जाती है। इसी साम्यवादके प्रचार-प्रसार तथा जीवनमें धारण करनेकी आवश्यकता है।

धर्म

२७२. प्रश्न- धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- धर्मका अर्थ है धारण करनेवाला। लोक रक्षाके लिये किये जानेवाले सभी साधन धर्म हैं। जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है।

२७३. प्रश्न- धर्मका लक्ष्य क्या है?

उत्तर- आत्मसाक्षात्कार या भगवत्प्राप्ति।

२७४. प्रश्न- सच्चा धर्म क्या है?

उत्तर- सच्चा धर्म वही है कि जैसा बर्ताव आदमी दूसरोंसे चाहता है वैसा ही दूसरोंके साथ पहले स्वयं करे। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'--जो बर्ताव अपने मनके प्रतिकूल हों, वे दूसरोंके प्रति कभी न करें।

२७५. प्रश्न- सामान्य धर्म क्या है?

उत्तर- सत्य, दम, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमा, दया आदि सभी सामान्य धर्म हैं।

२७६. प्रश्न- विशेष धर्म क्या हैं ?

उत्तर- वर्णधर्म, आश्रमधर्म, पुत्रधर्म, पत्नीधर्म, आदि विशेष धर्मकी कोटिमें आते हैं।

२७७. प्रश्न- धर्म-अधर्ममें कैसे भेद किया जाय ?

उत्तर- जो कार्य भगवत्प्राप्तिके अनुकूल है, वही धर्म है और जो प्रतिकूल है, वही अधर्म है। धर्म कर्त्तव्य है और अधर्म त्याज्य है।

२७८. प्रश्न- पुरुषार्थ चतुष्टय क्या है ?

उत्तर- धर्ममें भौतिकताका बहिष्कार नहीं है। 'अर्थ' और 'काम' भी आवश्यक पुरुषार्थ हैं, पर वे होने चाहिये 'धर्म-नियन्त्रित' और उनका लक्ष्य भोग न होकर 'मोक्ष' होना चाहिये। इसीलिये पुरुषार्थ-चतुष्टयमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारोंको स्थान है।

२७९. प्रश्न- हिंदू धर्म क्या है और उसकी रक्षा कैसे हो ?

उत्तर- वास्तवमें वर्णाश्रम धर्म ही हिन्दू धर्म है। वर्णाश्रम धर्मकी रक्षा ही हिंदू धर्मकी रक्षा है।

२८०. प्रश्न- हिंदू धर्मकी नीति किसपर प्रतिष्ठित है ?

उत्तर- हिंदूका व्यक्तिगत व्यवहार, उसकी समाजनीति, उसकी अर्थनीति, उसकी राजनीति, उसकी परमार्थनीति--सभी वर्णाश्रम धर्मपर प्रतिष्ठित हैं।

२८१. प्रश्न- धर्म कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर- धर्म सापेक्ष और निरपेक्ष--दो प्रकारका होता है। जिसमें दूसरी वस्तुकी अपेक्षा हो या जिससे दूसरी कोई विपरीत स्थिति उत्पन्न हो सकती हो, वह सापेक्ष है। जैसे सत्य भाषण धर्म है पर सत्य भाषणमें कहीं-कहीं दूसरे किसीकी हानि भी हो सकती है। अतः वह सापेक्ष है। संसारके प्रायः सभी धर्म किसी-न-किसीकी अपेक्षा रखनेके कारण सापेक्ष हैं। परन्तु व्रजांगनाओंका प्रेम-धर्म सर्वथा निरपेक्ष है। इसमें एकमात्र श्रीकृष्ण-सुखके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, अन्य किसीकी अपेक्षा नहीं है।

२८२. प्रश्न- तप क्या है ?

उत्तर- शरीर-मन-इन्द्रियोंको कार्यकी सफलताके लिये भलीभाँति लगनसे परिश्रम करना पड़े, जिसमें उन्हें तापका अनुभव हो।

२८३. प्रश्न- दया किसे कहते हैं?

उत्तर- दूसरेके दुःखसे सहज दुःखी होकर हृदयमें जो एक द्रवता होती है और उसे दूर करनेके लिये जो त्यागमयी वृत्ति होती है, उसका नाम 'दया' है।

२८४. प्रश्न- धर्म नानारूपात्मक क्यों है?

उत्तर- कोई एक ही धर्मका निश्चित रूप, कोई एक ही साधन सम्प्रदाय, कोई एक ही आचार-पद्धति सब देशों, सब लोगों और सब समयके लिये अभ्युदय-निःश्रेयस् सिद्धिका कारण हो सके, यह सम्भव नहीं है। इसलिये धर्म नानारूपात्मक है।

२८५. प्रश्न- जब धर्म सार्वभौम है तो परिस्थितिवश उसका अलग-अलग निरूपण क्यों है?

उत्तर- धर्म सार्वभौम है, सबके लिये है तो उसका समयानुकूल तथा साधककी परिस्थिति एवं अधिकारके अनुरुप भिन्न-भिन्न रूप भी होगा। इसलिये प्रत्येक युगके विशेष-विशेष धर्म हैं। प्रत्येक वर्ण और आश्रमके भिन्न धर्म हैं। प्रत्येक अधिकारके अनुसार भिन्न-भिन्न धर्म हैं।

२८६. प्रश्न- धर्मका सर्वस्व क्या है?

उत्तर- जिस किसी भी बर्तावसे अपनेको दुःख होता हो और जो अपनेको बुरा लगता हो, वह बर्ताव दूसरेके साथ कभी नहीं करना चाहिये। यही धर्मका सर्वस्व है।

२८७. प्रश्न- आपने वर्णाश्रम धर्मको हिन्दू धर्म बताया। इस परिप्रेक्ष्यमें 'धर्म' अंग्रेजीके 'रिलिजन'(Religion) से किस प्रकार भिन्न है?

उत्तर- अंग्रेजीमें रिलिजन (Religion)शब्दसे हमारे इस व्यापक धर्मका बोध नहीं होता। 'रिलिजन' का अर्थ सामाजिक और व्यक्तिगत कुछ खास-खास विश्वासों और उपासना पद्धतियोंतक ही सीमित है। परन्तु वर्णाश्रम धर्म तो व्यष्टि और समष्टिरूपमें समस्त मनुष्यजीवनके प्रत्येक क्षणको और उसकी प्रत्येक चेष्टाको कल्याणके साथ गूँथकर उत्तरोत्तर अभ्युदय और निःश्रेयस--भगवत्प्राप्तिकी ओर ले जाता है। 'रिलिजन' इस व्यापक वर्णाश्रमरूप महान् शरीरका एक अंगमात्र है।

२८८. प्रश्न- स्वधर्मका त्याग और परधर्मका ग्रहण क्या उचित है?

उत्तर- यह व्यक्ति और समाज दोनोंके लिये ही हानिकर है।

धर्म करता विपत्तिका नाश। धर्म करता सब पाप-विनाश॥
धर्म करता विज्ञान प्रकाश। धर्म भरता जीवन-उल्लास॥
धर्म ही है सबका आधार। धर्म ही है जीवनका सार॥
धर्म करता सबका उद्धार। धर्म ही है विशुद्ध आचार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३१२)

धनका सदुपयोग

२८९. प्रश्न- धनका सदुपयोग क्या है?

उत्तर- आपके धनपर प्राणिमात्रका अधिकार है। सबको उनका प्राप्य हिस्सा देकर बचे हुएका उपयोग करना यज्ञशिष्ट अमृतका सेवन करना है जो केवल अपने लिये ही कमाता-खाता है, वह तो पाप खाता है।

२९०. प्रश्न- धनका सदुपयोग करनेका क्या परिणाम होता है?

उत्तर- लोग, शास्त्रानुमोदितरूपसे विनयपूर्वक यज्ञकी भावनासे धनका सदुपयोग करने लगें तो उनका जीवन सुखमय हो जाय और परलोक उज्ज्वल हो जाय, समाजके सामने उच्च आदर्शकी स्थापना हो और उनका मानव जीवन सफलताकी ओर आगे बढ़ने लगे।

२९१. प्रश्न- धनकी कितनी गति होती है?

उत्तर- धनकी तीन गति होती है--दान, भोग और नाश।

२९२. प्रश्न- क्या धन हमारी सद्गतिमें कारण बन सकता है?

उत्तर- आप धनका सदुपयोग करेंगे तो वह आपकी सद्गतिमें कारण है।

प्रश्न- हमारे कमाये धनको कोई दूसरा बुरे काममें लगाये तो उसका फल क्या हमें भोगना पड़ता है?

उत्तर- आपका कमाया धन आपके या दूसरेके द्वारा बुरे काममें लगता है तो आपको दुर्गति भोगनी पड़ती है।

२९३. प्रश्न- क्या सच्ची कमाईके धनको भी खर्च करनेका हमें पूरा अधिकार नहीं है?

उत्तर- हम जो कुछ भी कमाते हैं, वह केवल हमारे अपने लिये नहीं है, सबके लिये है, उसमेंसे हमारा उतनेपर ही हक है, जितनेसे दूसरोंकी तरह ही हमारा जीवन-निर्वाह हो सके।

२९४. प्रश्न- जब सहायताके लिये लोग बार-बार तंग करते हैं तो झुंझलाहट होती है। तब क्या करें?

उत्तर- अभावग्रस्त लोग आपको सहायताके लिये तंग करें तो झुंझलाना नहीं चाहिये। प्यासा प्राणी पानीके लिये जलाशयके पास ही तो जाता है। आपकी हैसियतसे अधिक आवें तो आप सावधानीसे उदारतायुक्त मजबूती रख सकते हैं।

२९५. प्रश्न- आजकल अधिकांश धनियोंके धनका सदुपयोग क्यों नहीं होता है?

उत्तर- इसका एक कारण यह भी है कि इस समयका धन ही प्रायः 'अधर्मोपार्जित' है। अधर्मसे कमाए हुए धनका यथार्थ धर्मकार्यमें सद्व्यय होना बहुत कठिन है।

२९६. प्रश्न- भगवान् किसीको अधिक धन, शक्ति, साधन और सुविधा क्यों देते हैं?

उत्तर- भगवान् किसीको धन, शक्ति, साधन और सुविधा इसलिये देते हैं कि यह हमारे सृष्टि-संरक्षणके कार्यमें योग देगा। यदि हम किसी भी जीवकी थोड़ी-बहुत सेवा कर सकें तो भगवान्‌की आज्ञा पालन करके हमलोग अक्षय पुण्य एवं भगवत्कृपाके अधिकारी हो सकते हैं।

२९७. प्रश्न- दानमें क्या सावधानी रखनी चाहिये?

उत्तर- दक्षता यही है कि दान करते समय परिवारके लोगोंको न भूल जायँ, धूर्तोंके द्वारा ठगे न जायँ और योग्य पात्र कभी विमुख न लौटे। दानकी दुकान खोलनेकी जरूरत नहीं है पर उचित अवसर प्राप्त होनेपर हाथ रोकना भी नहीं चाहिये। जिनकी सेवा हो उनपर कभी अहसान नहीं जताना चाहिये। कोई सहायता माँगे तो तंग आकर उनका कभी जरा भी अपमान न करें।

२९८. प्रश्न- परधन क्यों नहीं ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- पराई चीज घरमें न आ जाय इसका बड़ा ध्यान रखना चाहिये। चोरीका धन ठहरता नहीं। कुछ दिनोंके बाद वह पहलेके धनको भी ले जाता है और उससे बुद्धि विकृत हो जाती है।

२९९. प्रश्न- सच्चा धनी कौन है?

उत्तर- अपने धनपर जो गरीबोंका अधिकार समझता है और उनके हितार्थ उसका यथायोग्य उपयोग करता है, वही सच्चा धनी है। शेष धन संग्रह करनेवाले लोग तो धनके रूपमें पापका संग्रह करते हैं और सदा दरिद्र ही रहते हैं।

३००. प्रश्न- धनकी पवित्रता कैसे होती है?

उत्तर- धर्मनिष्ठा, सदाचार और त्यागसे ही धनकी पवित्रता रहती है।

३०१. प्रश्न- क्या सच्ची कमाईके धनमें भी दोष होते हैं?

उत्तर- स्वभावसे ही 'अर्थ' पन्द्रह अनर्थोंको पैदा करनेवाला होता है--१-चोरी, २-हिंसा, ३-झूठ, ४-दम्भ, ५-मद, ६-काम, ७-क्रोध, ८-अभिमान, ९-भेद, १०-वैर, ११-स्पर्धा, १२-लम्पटता, १३-अविश्वास, १४-जुआ और १५-मद्यपान।

३०२. प्रश्न- धन कमानेमें सबकी स्वाभाविक रुचि है। अच्छे कार्यमें धन लगानेके लिये कमानेमें क्या नुकसान है?

उत्तर- 'अर्थ' नामक अनर्थकी प्राप्तिके साधन, इसकी प्राप्ति, इसकी वृद्धि, इसकी रक्षा, इसके व्यय और इसके नाश--सभीमें अत्यन्त प्रयास, चिन्ता, भ्रम तथा शोकका नित्य निवास रहता है।

३०३. प्रश्न- धन पाकर मनुष्यको सौभाग्य प्राप्त हुआ है या दुर्भाग्य इसका पता कैसे लगता है?

उत्तर- इसका पता धनके व्यवहारसे लगता है। यदि धन धर्ममें सहायक है तो वह मनुष्यके लिये सौभाग्य है और यदि पापमें सहायक है तो दुर्भाग्य है।

३०४. प्रश्न- धनका गौरव किसमें हैं?

उत्तर- धनका गौरव उसके पर-पीड़ा-निवारणार्थ किये जानेवाले विसर्जनमें है, न कि अनावश्यक संग्रहमें।

३०५. प्रश्न- अपने पासकी वस्तुओं-धनादिका श्रेष्ठतम उपयोग कैसे हो?

उत्तर- **तुम्हारे पास जो कुछ भी है, सब भगवान्‌का है। जहाँ-जहाँ दुःख है--अभाव है, वहाँ-वहाँ भगवान् ही उन वस्तुओंको चाहते हैं, यह समझकर उनकी वस्तुओंको प्रसन्नतापूर्वक उन्हें देकर अपने कर्तव्यका पालन करो।**

३०६. प्रश्न- सच्चा धन क्या है?

उत्तर- **जो नित्य प्रभुकी सेवामें ही लगता रहे।**

३०७. प्रश्न- धनका सदुपयोग किसपर निर्भर करता है?

उत्तर- **धनका सदुपयोग-दुरुपयोग कर्त्ताकी बुद्धिपर निर्भर करता है। जिनके पास धन हो, उन्हें सात्त्विक बुद्धिसे धनका सदुपयोग करना चाहिये।**

लाभ-हानि

३०८. प्रश्न- यथार्थ लाभ-हानि किसमें है?

उत्तर- **पारमार्थिक लाभ ही यथार्थ लाभ है और पारमार्थिक हानि ही यथार्थ हानि है।**

३०९. प्रश्न- जहाँ लौकिक लाभ पारमार्थिक लाभका विरोधी हो, वहाँ क्या करना चाहिये?

उत्तर- **वहाँ लौकिक लाभका मोह त्यागकर पारमार्थिक लाभकी रक्षा करनी चाहिये।**

३१०. प्रश्न- अगर पारमार्थिक लाभमें लौकिक हानि हो तब क्या करें?

उत्तर- **वहाँ पारमार्थिक लाभके लिये लौकिक हानिको सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिये।**

३११. प्रश्न- लौकिक और पारमार्थिक लाभ-हानिमें विशेष बात क्या है?

उत्तर- **लौकिक हानि-लाभसे आत्माके पतन-उत्थानका, अपने-आपके बन्धन-मोक्षका कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु पारमार्थिक हानिका तो अर्थ ही है आत्माका पतन, जीवात्माके बन्धनकी और भी दृढ़ता तथा पारमार्थिक लाभका अर्थ ही है आत्माका उत्थान, जीवात्माकी मुक्तिकी ओर अग्रसरता।**

नित्य-कर्म

३१२. प्रश्न- क्या सन्ध्या करना आवश्यक है?

उत्तर- सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये। सन्ध्या न करनेसे पाप लगता है। उसको भयानक नरक-यातना भोगनी पड़ती है।

३१३. प्रश्न- सन्ध्या न हो सके तो फिर यज्ञोपवीत ही न रखें?

उत्तर- द्विजोंके लिये यज्ञोपवीत धारण करना परम आवश्यक है।

३१४. प्रश्न- गायत्री जप करते समय किसका ध्यान करें?

उत्तर- आप अपनी रुचिके अनुसार देवी गायत्री, भगवान् सूर्य अथवा ईष्टदेव भगवान्का ध्यान कर सकते हैं। निर्गुण, निराकार ब्रह्मका ध्यान भी किया जा सकता है।

३१५. प्रश्न- क्या सन्ध्या न करनेसे पूजा, जप, गीतापाठ आदि व्यर्थ होते हैं?

उत्तर- ऐसी बात नहीं है। इनके करनेका सुफल भी होगा और सन्ध्या न करनेका पाप भी।

३१६. प्रश्न- क्या गृहस्थ गायत्री मंत्रके आदि-अंतमें प्रणव लगा सकता है?

उत्तर- गायत्री मंत्रके आदि-अंतमें प्रणव लगानेमें गृहस्थके लिये कोई दोष नहीं है।

३१७. प्रश्न- बलिवैश्वदेव करना क्यों जरूरी है?

उत्तर- बलिवैश्वदेव न करनेमें कर्मलोपका दोष है, करनेमें पवित्रता आती है। रोज करना चाहिये।

जिस मानव-शरीरमें होते सिद्ध सहज चारों पुरुषार्थ।
जिसमें सत्यपथपर चल मानव मोक्षरूप पाता परमार्थ॥
उसे खो रहा मूढ़ मोहवश दुःखयोनि भोगोंमें व्यर्थ।
तिर्यग्योनि-नरक-दायक संतत संचित कर रहा अनर्थ॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १४९०)

वर्णाश्रम-धर्म

३१८. प्रश्न- वर्ण और आश्रम धर्म मानना क्यों आवश्यक है?

उत्तर- **वर्ण धर्म समाज-जीवनका सुन्दर संगठन करके उसकी रक्षा करता है और आश्रम धर्म व्यक्तिगत जीवनको धर्मके पवित्र आदर्शपर प्रतिष्ठित करके उसकी सुव्यवस्था करता है।**

३१९. प्रश्न- चारों वर्ण किसने बनाये?

उत्तर- **यह वर्ण धर्म भगवान्‌के द्वारा रचित है--यह स्वयं भगवान्‌ने कहा है।**

३२०. प्रश्न- वर्ण निर्णयमें जन्मको मुख्य क्यों मानते हैं?

उत्तर- **वर्णका मूल है--जन्म। कर्म उसके स्वरूपकी रक्षामें प्रधान कारण हैं और वह आवश्यक है। वर्तमान वर्णकी प्राप्तिमें पूर्वजन्मका कर्म कारण बनता है। इस प्रकार वर्ण और जातिमें जन्म और कर्म दोनों ही आवश्यक हैं; परन्तु प्रधानता जन्म की है।**

३२१. प्रश्न- ब्राह्मण आदिका विभाग कर्मसे क्यों नहीं करना चाहिये?

उत्तर- **जीविका और विवाह आदि व्यवहारके लिये जन्मकी प्रधानता तथा कल्याणकी प्राप्तिके लिये कर्मकी प्रधानता माननी चाहिये।**

३२२. प्रश्न- क्या कर्मसे वर्ण मानना गलत है?

उत्तर- **केवल कर्मसे वर्णको माननेवाले वस्तुतः वर्णको मानते ही नहीं। वर्ण यदि कर्मसे माना जाय, तब तो एक दिनमें एक ही मनुष्यको न मालूम कितनी बार वर्ण बदलना पड़ेगा।**

३२३. प्रश्न- जो जन्मसे ब्राह्मण है परन्तु ब्राह्मणोचित कर्म नहीं करता, उसे क्या मानें?

उत्तर- **जो जन्मसे ब्राह्मण है उसे ब्राह्मण ही कहा जायगा। यदि वह अब्राह्मणोचित कर्म करता है तो कर्मभ्रष्ट ब्राह्मण कह सकते हैं। उसे वह सम्मान नहीं मिल सकता, जो कर्मनिष्ठ ब्राह्मणको प्राप्त होना चाहिये।**

ईश्वर

३२४. प्रश्न- ईश्वर क्या है?

उत्तर- जो सृष्टि करते हैं, जो सबको पैदा करते हैं, सबका पालन करते हैं और जो सबका नाश करते हैं, जिनकी दयालुता और न्यायपरायणतासे जगत्‌का सारा कार्य यथाविधि हो रहा है, जो सर्वशक्तिमान् हैं, वे ही ईश्वर हैं।

३२५. प्रश्न- ईश्वरके होनेका क्या प्रमाण है?

उत्तर- ईश्वरके अस्तित्वके प्रमाण पद-पदपर मिलते हैं। जगत्‌की सुश्रृंखला, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादिका नियमित कार्य आदि इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। ईश्वर तर्कसे सिद्ध होनेवाला तत्त्व नहीं है। जो समष्टि बुद्धिका भी कारण है, उसे नगण्य व्यष्टि बुद्धिसे सिद्ध करनेका प्रयत्न करना तो हास्यास्पद ही है। इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाणके बिना ईश्वरको स्वीकार न करना भी वैसी ही वातुलता है, जैसी प्रत्यक्ष प्रमाणके अभावमें माताके कहनेपर भी पिताको अस्वीकार करना। पिताके होनेमें जैसे माताके वचन प्रमाण हैं, वैसे ही ईश्वरके होनेमें शास्त्र तथा भगवत्प्राप्त महापुरुषोंके वचन--आप्तवाक्य ही प्रमाण हैं।

३२६. प्रश्न- ईश्वरका स्वरूप क्या है?

उत्तर- ईश्वर घट-घटवासी, अन्तर्यामी, कर्मफलोंका दाता तथा सम्पूर्ण भूतोंका नियामक है। वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। वह सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार, अस्ति, भाति, प्रिय, सत्, चित्, आनन्द सब कुछ है। वह क्या है और क्या नहीं है इसका वर्णन नहीं हो सकता।

३२७. प्रश्न- वे निराकार हैं या साकार?

उत्तर- वे ही निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण साकार हैं। लीलाभेदसे उन एकके ही अनेक नाम, रूप तथा उपासनाके भेद हैं।

३२८. प्रश्न- विभिन्न धर्मोंके ईश्वर एक हैं या अलग-अलग?

उत्तर- ईश्वर एक हैं, धर्म उनकी प्राप्तिके रास्ते हैं। वे धर्म धर्म नहीं है जो ईश्वर-प्राप्तिमें रोड़े अटकावें। सच्ची बात यह है कि एक ही

भगवान्‌को लोग भिन्न-भिन्न नामोंसे पूजते हैं। श्रीकृष्ण ही अल्लाह हैं।

३२९. प्रश्न- और धर्मोंकी तरह हिंदू धर्ममें ईश्वरका एक स्वरूप क्यों नहीं है?

उत्तर- यह सत्य है कि हिंदू-सनातन-धर्ममें अनन्त देवताओंकी पूजा है। उनके भिन्न-भिन्न नाम, रूप हैं पर ध्यानसे देखोगे तो पता लगेगा कि हिंदू-धर्म 'बहुदेववादी' नहीं है। एक ही परम तत्त्वके असंख्य विधि लीलारूप हैं।

३३०. प्रश्न- ईश्वरका वर्णन करके समझाइये?

उत्तर- जो बुद्धि-मन-वाणीसे परेकी चीज है उसका कोई क्या वर्णन करे? ईश्वरका जो कुछ वर्णन होता है वह अधूरा ही होता है।

३३१. प्रश्न- इस सम्बन्धमें आप अपना अनुभव बताइये?

उत्तर- जिन दिव्य और अलौकिक रहस्योंको भगवत्कृपासे भगवत्प्रेमी जान पाता है, कहा जाता है वे इतने गूढ़, इतने सूक्ष्म और इतने गम्भीर होते हैं कि न तो किसी लौकिक प्रमाणसे सिद्ध किया जा सकता है, न किसीकी लौकिक बुद्धिमें वे बातें आ सकती हैं और न प्रकट करनेकी कोई आवश्यकता ही होती है।

३३२. प्रश्न- ईश्वर और आत्मामें क्या भेद है?

उत्तर- ईश्वर और आत्मा अभिन्न हैं, चेतन हैं, एक हैं। केवल मन, बुद्धि, अलग-अलग होनेसे पृथक्-पृथक् आत्माकी प्रतीति होती है।

३३३. प्रश्न- भगवान्‌का नाम सत्य-संकल्प क्यों है?

उत्तर- भगवान्‌का संकल्प, संकल्पानुसार कार्य और कार्यकी सिद्धि--तीनों एक साथ होती है। इसलिये उनका नाम सत्य संकल्प है।

३३४. प्रश्न- भगवान्‌के मुख्य स्वरूप कौन-से हैं?

उत्तर- भगवान्‌के तीन स्वरूप मुख्य हैं--ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्। निर्गुण, निराकार ब्रह्म हैं, सगुण-निराकार परमात्मा हैं और सगुण-साकार भगवान् हैं। भगवान् तत्त्व-स्वरूपसे नित्य एक हैं।

३३५. प्रश्न- भगवान् जब सगुण-साकार हैं तो फिर निर्गुण-निराकार कैसे?

उत्तर- उनका सगुण-साकार स्वरूप भी निर्गुण-निराकार ही है;

क्योंकि वह प्राकृतिक तथा पञ्चभूतात्मक न होकर भगवत्स्वरूप ही है।

३३६. प्रश्न- क्या 'आदिब्रह्म' और 'श्रीराधाकृष्ण' में स्वरूपतः कोई अन्तर है?

उत्तर- इनमें स्वरूपतः कोई अन्तर नहीं है। जैसे प्रकाशके घनीभूत पुञ्जको हम सूर्य कहते हैं, उसी प्रकार सत्, चित्, आनन्द एवं प्रेमके घनीभूत पुञ्जका नाम 'श्रीराधा-कृष्ण' है। इनका सर्वत्र व्यापक चिन्मय आलोक ही 'ब्रह्म' है।

३३७. प्रश्न- भगवान्‌का श्रीविग्रह क्या है?

उत्तर- दिव्य, अनन्त, आनन्दकी घनीभूत मूर्ति।

३३८. प्रश्न- ईश्वरके अस्तित्वको कैसे स्वीकार करें?

उत्तर- ईश्वरके अस्तित्वमें कभी सन्देह न करो। जगत्‌का अस्तित्व ही उसके अस्तित्वको सिद्ध करता है। जगत्‌को स्वीकार करना और भगवान्‌को अस्वीकार करना वैसा ही है जैसा सोनेके गहनेको स्वीकार करते हुए सोनेको अस्वीकार करना।

३३९. प्रश्न- भगवान् हैं, सर्वत्र हैं, सर्वदा हैं, किसी भी देश-काल-पात्रमें उनका अभाव नहीं है; फिर भी उनका अनुभव सबको क्यों नहीं होता?

उत्तर- इसलिये नहीं होता कि उनका तत्त्वस्वरूप अत्यन्त ही पवित्रतम और सूक्ष्मतम है। उस सूक्ष्म तत्त्वको जानने और अवधारण करनेके लिये तुम्हें शरीर, मन और बुद्धिरूप आधारको उसके उपयुक्त बनाना पड़ेगा। जबतक शरीर अशुद्ध है, चित्त चञ्चल और अपवित्र है और बुद्धि स्थूल और व्यभिचारिणी है, तबतक भगवान्‌की यथार्थ अनुभूति नहीं हो सकती।

३४०. प्रश्न- इसका उपाय क्या है?

उत्तर- तप, शौच और आचारसे शरीरको शुद्ध करो। सत्संग, भगवन्नाम-जप और भगवद्‌गुणोंके चिन्तनसे चित्तको शुद्ध और संयत करो। परम सत्य एकमात्र परमात्माके स्वरूपके ध्यानसे बुद्धिको सूक्ष्म और अव्यभिचारिणी बनाओ। फिर परमात्माका अनुभव होनेमें--भगवान्‌के दर्शनमें देर नहीं होगी।

है। बुद्धदेवने हिंदू धर्मकी भाँति ही स्वर्ग-नरक माने हैं। वे कहते हैं--

'सग्गां सुकृतिनो यस्सि निरये पापकाम्मिनो अभूतवादी निरयं उपेति।' (धम्मपद)

'पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गमें जाते हैं और पापकर्मी लोग नरकमें।' असत्यवादी नरकमें जाते हैं।' हिन्दूधर्मकी भाँति ही उन्होंने कर्मभेदसे पुनर्जन्म माना है और देव, मानुष, नरक, पिशाच, पशु आदिकी प्राप्ति वैसी ही बतलायी है, जैसे छान्दोग्य-उपनिषदमें है।

३४५. प्रश्न- तब फिर बुद्धको शून्यवादी क्यों कहते हैं?

उत्तर- उनका शून्य वस्तुतः ब्रह्मवादियोंका अनिर्वचनीय अचिन्त्य ब्रह्म ही है। क्योंकि उन्होंने शून्यको 'अक्षय' कहा है।

'ये च सुभूते! शून्या अक्षया अपिते।'

'यह शून्य ब्रह्मरूप है, यही परमानन्द स्वरूप है।'

३४६. प्रश्न- क्या उनकी निर्वाण प्राप्ति और हमारी मुक्ति एक ही है?

उत्तर- निर्वाण प्राप्तिमें बुद्धदेवने राग-द्वेष-मोह आदिका त्याग साधन बतलाया है। निर्वाण प्राप्ति जीवित अवस्थामें भी होती है, उसे 'सोपाधि शेष निर्वाण' कहा है, यही हिंदूधर्मकी 'जीवन्मुक्ति' है और देहान्तके बाद होनेवाले निर्वाणको 'अनुपाधिशेष' निर्वाण कहा है, यही विदेह मुक्ति है।

३४७. प्रश्न- फिर बुद्ध धर्मको नास्तिक कबसे कहा जाने लगा?

उत्तर- भगवान् बुद्धके निर्वाणके बाद अपनेको बुद्धके अनुयायी माननेवाले लोगोंने स्वेच्छाचार किया। वेदका विरोध प्रत्यक्ष किया। वे एक प्रकारसे घोर वाममार्गी हो गये। इसीसे इस मतको 'नास्तिक' माना गया।

विश्वचराचरमें जो छाये, अखिल विश्वके जो आधार।
सदा सर्वगत, चलता जिनमें अखिल विश्वका सब व्यापार॥
कण-कणमें जो व्याप्त नित्य, हैं अणु-महान जिनका विस्तार।
जिनसे कभी न खाली कुछ भी, सर्वरूप जो, सर्वाकार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२७४)

वेद

३४८. प्रश्न- वेद क्या है?

उत्तर- वेद कहते हैं अनन्त ज्ञान राशिको।

३४९. प्रश्न- वेद ईश्वरके बनाये हुए हैं या अन्य किसीके।

उत्तर- वेदोंको ईश्वरकृत नहीं बल्कि 'अपौरुषेय' कहा जाता है। योगदर्शनमें ईश्वरको भी पुरुष विशेष कहा है।

३५०. प्रश्न- वेदोंका आविर्भाव कब हुआ?

उत्तर- वेदोंका आविर्भाव सृष्टिके आरम्भके समय प्रत्येक कल्पमें होता रहता है। उसके तो ज्ञानमें ही नहीं, वर्णोंके क्रममें भी समानता ही रहती है। यही शास्त्रोंका सिद्धान्त है।

३५१. प्रश्न- तब ऋषियोंकी वेदोंमें क्या भूमिका है?

उत्तर- मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने कर्तृत्वाभिमान शून्य होकर इनका साक्षात्कार किया है। ये उनकी बुद्धिसे प्रसूत नहीं हैं, इसलिये इनकी अपौरुषेय संज्ञा उचित ही है।

३५२. प्रश्न- केवल वेदोंको ही अपौरुषेय कहा जाता है या अन्य शास्त्रोंको भी?

उत्तर- बृहदारण्यक उपनिषद्‌की एक श्रुति (२-४-१०) में वेद, उपनिषद् और इतिहास आदि सभीको इस परम पुरुषका श्वास बताया गया है। जिस प्रकार श्वास बिना पौरुष-प्रयत्नके चलता रहता है उसी प्रकार ये सब भी बिना पौरुष-प्रयत्नके अभिव्यक्त होते हैं।

३५३. प्रश्न- आप्तवाक्यका क्या अर्थ है?

उत्तर- आप्तवाक्यका अर्थ है वेदवाक्य।

३५४. प्रश्न- वेदान्त क्या है?

उत्तर- जिससे समस्त ज्ञान निकलता है और जिसमें जाकर मिल जाता है, उसका नाम वेदान्त है।

उपनिषद्

३५५. प्रश्न- उपनिषद् क्या है?

उत्तर- **उपनिषद् ज्ञानकी खान है। जीवनकी सभी दिशाओंमें प्रकाश देनेवाली अखण्ड परम ज्योति है।**

३५६. प्रश्न- उपनिषदोंकी क्या महत्ता है?

उत्तर- **उपनिषदोंकी महत्ता उनकी महान् ज्ञान राशिको लेकर है। जो वेदोंके सारके रूपमें ऋषियों द्वारा श्रुत और संग्रहीत हैं।**

३५७. प्रश्न- उपनिषद् कितने हैं?

उत्तर- **उपनिषद् सैकड़ों हैं। उनमें बारह प्रधान हैं।**

३५८. प्रश्न- बारह प्रधान उपनिषद् कौनसे हैं?

उत्तर- **वे हैं--ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और कौषीतकि ब्राह्मण।**

३५९. प्रश्न- संक्षेपमें उपनिषदोंके क्या उल्लेख हैं?

उत्तर- **उपनिषदोंमें तत्त्वज्ञान या ज्ञानके परम साध्य तत्त्वके स्वरूपका साक्षात्कार ही नहीं है, वहाँतक पहुँचनेके विभिन्न रुचिके अधिकारियोंके अनुकूल विविध साधनोंका वर्णन भी है। सदाचारका भी महत्त्वपूर्ण उल्लेख है।**

३६०. प्रश्न- क्या इनसे सुख-शान्ति मिलती है?

उत्तर- **यह भारतीयोंकी परम निधि है और किसी दिन इन्हींके प्रकाशसे विश्वमें यथार्थ सुख-शान्तिका प्रसार होगा।**

सकल जग हरि कौ रूप निहार।
हरि बिनु बिस्व कतहुँ कोउ नाहीं, मिथ्या भ्रम-संसार॥
अलख-निरंजन, सब जग ब्यापक, सब जग कौ आधार।
नाहि आधार, नाहि कोउ हरि महँ, केवल हरि-बिस्तार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १२५८)

पुराण

३६१. प्रश्न- पुराण अनादि हैं या श्रीवेदव्यासजी द्वारा रचित हैं?

उत्तर- पुराण मूलतः तो वेदकी भाँति भगवान्‌का निःश्वास रूप ही है। भगवान् व्यासदेवने प्राचीनतम पुराणका प्रकाश और प्रचार किया। वस्तुतः पुराण अनादि और नित्य हैं।

३६२. प्रश्न- फिर पुराणोंमें परस्पर विरोधी प्रसंग क्यों है?

उत्तर- परस्पर विरोधी प्रसंग कल्पभेदको लेकर हैं।

३६३. प्रश्न- पुराणोंमें कई प्रसंग असम्भवसे लगते हैं। क्या सब बातें यथार्थ हैं?

उत्तर- जबतक वायुयानका निर्माण नहीं हुआ था तबतक पुराणोंमें वर्णित विमानोंके वर्णनको असम्भव मानते थे पर अब वैसी बात नहीं रही। पुराणवर्णित सभी असम्भव बातें ऐसी ही हैं, जो हमारे सामने न होनेके कारण असम्भव-सी दीखती हैं।

३६४. प्रश्न- क्या देवताओंके प्रत्यक्ष मिलनेवाली बातें भी सत्य हैं?

उत्तर- प्राचीनकालके भक्तिपूतयोगी, तपस्वी, ऋषि-मुनियोंमें ऐसी शक्ति थी कि उनमेंसे कई समस्त लोकोंमें निर्बाध यातायात करते थे। देवताओंसे मिलते थे। अपने तपोमय आकर्षणसे देवताओंको यहाँतक कि भगवान्‌को भी प्रकट कर लेते थे।

३६५. प्रश्न- पुराणोंमें कई बातें घृणित मालूम देती हैं?

उत्तर- उनमें कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जिनमें किसी निगूढ़ तत्त्वका विवेचन करनेके लिये आलंकारिक भाषाका प्रयोग किया गया है। कुछ ऐसी बातें हैं जो सच्चा इतिहास है। बुरी बात होनेपर भी सत्यके प्रकाश करनेकी दृष्टिसे लिख दिया गया है।

३६६. प्रश्न- पुराण कितने हैं?

उत्तर- इधर चार प्रकारके पुराणोंका पता लगा है। महापुराण, उपपुराण, अतिपुराण और पुराण। चारोंकी १८-१८ संख्या बतायी जाती है। नामावलीके क्रम और विभागमें अन्तर भी हो सकता है। यह अन्वेषण और गवेषणाका विषय है।

३६७. प्रश्न- महापुराण कौन-कौनसे हैं?

उत्तर- महापुराण--ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड।

३६८. प्रश्न- उप पुराण कौन-कौनसे हैं?

उत्तर- उपपुराण--भागवत, माहेश्वर, ब्रह्माण्ड, आदित्य, पराशर, सौर, नन्दिकेश्वर, साम्ब, कालिका, वारुण, ओशनस, मानव, कपिल, दुर्वासस, शिवधर्म बृहन्नारदीय, नरसिंह और सनत्कुमार।

३६९. प्रश्न- अति पुराण कौन-कौनसे हैं?

उत्तर- अतिपुराण--कार्तव, ऋजु, आदि, मुद्गल, पशुपति, गणेश, सौर, परानन्द, बृहद्धर्म, महाभागवत, देवी, कल्कि, भार्गव, वासिष्ठ, कौर्म, गर्ग, चण्डी और लक्ष्मी।

३७०. प्रश्न- पुराण कौन-कौनसे हैं?

पुराण--बृहद्विष्णु, शिव, उत्तरखण्ड, लघु बृहन्नारदीय, मार्कण्डेय, वह्नि, भविष्योत्तर, वराह, स्कन्द, वामन, बृहद्वामन बृहन्मत्स्य, स्वल्पमत्स्य, लघुवैवर्त और ५ प्रकारके भविष्य।

३७१. प्रश्न- इतने पुराणोंका महत्त्व क्या है?

उत्तर- पुराण अमूल्य रत्नोंके अगाध समुद्र हैं। इनमें जो श्रद्धाके साथ जितना ही गहरा गोता लगायेंगे, वे उतनी ही विशाल रत्नराशि प्राप्तकर धन्य होंगे।

गीता

३७२. प्रश्न- हिंदू शास्त्रोंमें गीताका स्थान महान् क्यों माना गया है?

उत्तर- गीताके अनुसार जीवन बनानेसे मनुष्यका प्रत्येक व्यवहार आध्यात्मिक उन्नतिका, भगवत्पूजनका साधन बन जाता है। गीताने मुख्यतः दो निष्ठाओं--कर्मयोग और ज्ञानयोगका वर्णन करके उन्हें भक्तिके साथ संयुक्त करके 'मणिकाञ्चन-योग' उपस्थित किया है। गीता श्रीभगवान्‌की वाणी है, इसलिये वह सभीके लिये उपयोगी है। जो जैसा अधिकारी है, गीताका उसके लिये वैसा ही उपदेश है। रत्नोंका समुद्र है गीता--जिसकी जैसी डुबकी, उसको वैसा ही फल।

३७३. प्रश्न- गीताकी क्या विशेषता है?

उत्तर- स्वयं भगवान्‌की वाणी होनेसे गीता ऐसा आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है कि किसी तरह भी इसकी शरण ग्रहण करनेसे शेषमें परमात्मप्रेमका पथ मिल जाता है।

३७४. प्रश्न- गीता क्या सिखाती है?

उत्तर- यहाँ सुखपूर्वक जीवन बिताकर अन्तमें परमात्माके परमधाममें पहुँचनेके लिये गीता ही सुगमताके साथ सच्चे पथ-प्रदर्शकका काम करती है।

३७५. प्रश्न- गीतामें अनोखापन क्या है?

उत्तर- गीतामें ही उस अनोखे तत्त्वका सरल विवेचन है जिससे मनुष्य अपने जातिगत सारे कार्योंको यथाविधि करता हुआ ही परम कल्याणको प्राप्त कर सकता है।

३७६. प्रश्न- गीताका पर्यवसान किसमें है तथा प्रतिपाद्य विषय क्या है?

उत्तर- गीताका पर्यवसान साकार भगवान्‌की शरणागतिमें है और यही गीताका प्रधान प्रतिपाद्य विषय है।

३७७. प्रश्न- गीताका मुख्य विषय क्या है?

उत्तर- श्रीभगवद्‌गीताको हम 'निष्काम कर्मयुक्त भक्तिप्रधान ज्ञानपूर्ण अध्यात्म शास्त्र' कह सकते हैं?

३७८. प्रश्न- गीता किस मार्गके लिये पथ-प्रदर्शन कर सकती है?

उत्तर- यह सभी प्रकारके मार्गोंमें संरक्षण, सहायक, मार्गदर्शक, प्रकाशदाता और पवित्र पाथेयका प्रत्यक्ष व्यावहारिक काम दे सकती है।

३७९. प्रश्न- 'सर्वधर्मत्याग' रूपी परम धर्मतक पहुँचनेके लिये क्या आवश्यकता है?

उत्तर- सर्वप्रथम धर्म पालनकी आवश्यकता होती है इसलिये जबतक भोगोंमें पूर्ण वैराग्य एवं भक्तिमें पूर्ण श्रद्धा नहीं है तबतक सर्वधर्मत्यागकी कल्पना नहीं की जा सकती।

३८०. प्रश्न- गीताका पाठ कैसे करना चाहिये?

उत्तर- पाठ करते समय चेष्टा रखनी चाहिये कि भगवान्‌का

ध्यान होता रहे, अर्थका अनुसंधान होता रहे और पाठमें पूरी श्रद्धा रखनी चाहिये। साथ ही गीताके आदेशानुसार जीवन बनानेका भी यत्न रहे।

३८१. प्रश्न- अर्जुनका मोह क्या था?

उत्तर- भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे युद्धमें प्रवृत्त होनेपर, समझदार अर्जुनके मनमें अपनी समझदारीका अभिमान जाग्रत हो उठा एवं लीलामय प्रियतम भगवान्‌की प्रेरणाके विरुद्ध 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' कहकर चुप बैठ गये। यही अर्जुनका मोह था।

३८२. प्रश्न- अर्जुनका मोह नष्ट किस प्रकार हुआ?

उत्तर- भगवान्‌ने गीतोक्त 'सर्वगुह्यतम' उपदेश (सारे धर्मोंका आश्रय छोड़कर केवल मेरी लीलाका यन्त्र बना रह, मेरी शरणमें पड़ा रह, तुझे पाप-पुण्यसे क्या मतलब, तुझे चिन्ता भी कैसी, मैं आप ही सब सँभालूँगा)से नष्ट कर दिया।

सर्वधर्म समभाव

३८३. प्रश्न- क्या विभिन्न धर्मोंका एकीकरण हो सकता है?

उत्तर- धर्मोंका--साधनमार्गोंका एकीकरण नहीं हो सकता; उनका लक्ष्य एक हो सकता है और एक है। हमारे शरीरके सब अवयवोंका कार्य एक-सा नहीं हो सकता, पर उनका लक्ष्य एक है--हमारे सुखका साधन। बस, सब धर्मोंका लक्ष्य है--भगवान्‌को प्राप्त करना। उनकी पद्धतियाँ पृथक्-पृथक् हो सकती हैं।

३८४. प्रश्न- क्या सर्वधर्म समन्वय सम्भव है?

उत्तर- सर्वधर्म समन्वय तो पागलपन है।

३८५. प्रश्न- आजकल विभिन्न धर्मावलम्बी एक-दूसरेको सहन नहीं करते। इनमें परस्पर सौहार्द होनेका उपाय क्या है?

उत्तर- हमें यह मानना चाहिये कि हमारे ही भगवान्‌को दूसरे लोग भिन्न-भिन्न नामों, रूपों और भावोंसे पूजते हैं। सत्य एक है, भगवान् एक है। उन्हीं एकको अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारसे पूजा होती है। हमारे ही राम कहीं विष्णुरूपसे, कहीं कृष्णरूपसे, कहीं देवीरूपसे, कहीं ब्रह्मके भावसे, कहीं खुदाके नामसे और कहीं

परमपिताके नामसे पूजित होते हैं। हमारे ही श्रीकृष्णको कोई शिव कहते हैं, कोई ब्रह्मा कहते हैं, कोई इन्द्र कहते हैं, कोई सूर्य कहते हैं, कोई गणेश कहते हैं, कोई बुद्ध कहते हैं, कोई कर्म कहते हैं और कोई अटल नियम कहते हैं। मतलब यह कि दूसरा कोई महेश्वर है ही नहीं। हमारा वह प्यारा महेश्वर इतना महान् और बहुरुपिया है कि नानाप्रकारके रूपोंमें सर्वत्र वही पूजित होता है। ऐसा मान लेनेपर कहीं कोई झगड़ा नहीं रहेगा। हम सब उसे भिन्न-भिन्न रूपोंमें पूजकर उसके ही महत्त्वको बढ़ा रहे हैं, हमारे प्रियतमके, उपासक, भक्त, सेवक होनेसे सभी हमारे प्रिय हैं, सभी हमारे आत्मीय हैं, प्यारेके प्यारे होनेके नाते सभी हमारे प्राणोपम हैं। इसी प्रकारके सत्य और शुद्ध विचारोंसे दूसरोंके मतोंको सहन करना चाहिये।

एक सत्य जो परम तत्त्व परमात्मा ब्रह्म ईश भगवान्।
निर्गुण-गुणसह-निराकार, साकार-सगुण, सब भाँति महान्॥
नित्य, सच्चिदानन्द, सर्वमय, सर्वातीत, सर्व-आधार।
विष्णु, सूर्य, दुर्गा, शिव, गणपति, राम-कृष्ण अवतार-उदार॥
अर्हत्, बुद्ध, पिता ईसाके, अहुरमज्द, अल्लाह, प्रधान।
प्रकृति, नियम, अणु, महत्, कर्म, कर्त्ता, अव्यक्त, स्वरूप-ज्ञान॥
सभी प्राणियोंमें विभक्त-से जो प्रतीत होते 'अविभक्त'।
वही उपास्य, उपासित होते विविध रूपमें हो अभिव्यक्त॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० ८५५)

प्राणिमात्रसे द्वेषरहित रह, रखो सभीमें मैत्री भाव।
दुखियोंको नित सुख देनेका रखो विनययुत सक्रिय चाव॥
छीनो नहीं कभी मनसे भी पर-धन, पर-यश, पर-अधिकार।
करो सभीसे सदा सत्य-हित-प्रेमभरा सात्त्विक व्यवहार॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३९८)

गुरु

३८६. प्रश्न- क्या गुरुकी आवश्यकता है ?

उत्तर- गुरुकी अत्यन्त आवश्यकता है; परन्तु यह आवश्यक नहीं कि चाहे जिससे और चाहे जो मन्त्र ले लिया जाय।

३८७. प्रश्न- गुरु कैसा होना चाहिये ?

उत्तर- गुरु अनुभवी, परमार्थ तत्त्वके ज्ञाता, त्यागी, शिष्यका कल्याण करानेमें समर्थ होना चाहिये।

३८८. प्रश्न- गुरु किसे बनायें ?

उत्तर- किसीको गुरु स्वीकार करनेके पूर्व अवश्य ही यह सोच लेना, देख लेना चाहिये कि गुरु सर्वथा परमार्थपरायण संत है कि नहीं? पर उनका आश्रय लेनेके पश्चात् सर्वथा उनके अनुकूल व्यवहार करना आवश्यक है।

३८९. प्रश्न- ऐसा गुरु न मिले तो क्या करना चाहिये ?

उत्तर- ऐसा गुरु न मिले तो खोज करनी चाहिये। गुरु प्राप्तिकी प्रबल चाह होगी और इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थनाकी जायेगी तो भगवान् स्वयं ऐसे गुरुसे भेंट करा देंगे या वे स्वयं ही गुरुरूपमें प्रकट होकर आपके जीवनको सफल कर देंगे।

३९०. प्रश्न- क्या गुरुमें ईश्वरसे बढ़कर श्रद्धा-भक्ति होनी चाहिये?

उत्तर- गुरुमें ईश्वरसे बढ़कर श्रद्धा-भक्ति होनी चाहिये यह सत्य है, परन्तु वे गुरु भी वैसे त्यागी, अनुभवी महात्मा ही होने चाहिये जिनका संग और उपदेश शिष्यके परम कल्याणमें प्रधान कारण हो।

३९१. प्रश्न- गुरु स्वीकार करनेके पूर्व क्या किया जाय ?

उत्तर- शिष्यका यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि अपनी सब बात एक बार उनके सामने रख दे। उनके पूछनेपर अपनी रुचि, अपना स्वभाव, अपना अभिलषित इष्ट और अपना साध्य बतला दे। इसके बाद वे जो कुछ निर्णय करें, जैसा जो कुछ बतावें उसके अनुसार शिष्य आचरण करे।

३९२. प्रश्न- सद्‌गुरु कैसे मिले ?

उत्तर- किसीके बतानेसे सद्‌गुरु मिलना प्रायः असम्भव है। सद्‌गुरुकी प्राप्ति साधनके बलसे ही होती है। भगवान् साधककी सभी

आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हैं। जब वे देखते हैं कि अब ठीक अवसर आ गया, तब वे स्वतः ही उसे गुरुदेवसे मिला देते हैं।

३९३. प्रश्न- क्या भगवान्‌को गुरु बनाया जा सकता है?

उत्तर- अवश्य ही भगवान्‌को गुरु बनाया जा सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण 'जगद्‌गुरु'के नामसे प्रसिद्ध ही हैं। भगवान्‌को गुरु वरण करना और भी उत्तम है।

३९४. प्रश्न- क्या गुरुमंत्रकी आवश्यकता है?

उत्तर- किसी गुरुमंत्रकी आवश्यकता नहीं है। भगवान् स्वयं ही सबके परम गुरु भी हैं। उन्हींको सर्वस्व मानकर उनका जो नाम-रूप अच्छा लगे, उसीके अनुसार उसीके द्वारा उनकी उपासना करे।

३९५. प्रश्न- क्या गुरु बदला जा सकता है?

उत्तर- नये गुरु बदलनेसे साधनामें बड़ी गड़बड़ी मच जाती है।

३९६. प्रश्न- क्या ब्राह्मणके अलावा दूसरे वर्णके व्यक्तिको गुरु बना सकते हैं?

उत्तर- यदि ब्रह्मनिष्ठ, भगवत्प्राप्त एवं गुरुचित गुणोंसे सम्पन्न गुरु न मिल सके तो उक्त गुणोंवाले क्षत्रिय अथवा वैश्यसे भी श्रद्धापूर्वक परमार्थ पथका उपदेश लिया जा सकता है। यह बातें शास्त्रों द्वारा अनुमोदित हैं।

३९७. प्रश्न- स्त्रियोंको गुरु बनाना चाहिये या नहीं?

उत्तर- मेरी समझमें स्त्रियोंके लिये किसी मनुष्य विशेषको गुरु बनानेकी आवश्यकता नहीं है। वे अपने पति या सबसे परमपति श्रीभगवान्‌को ही गुरुरूपमें मानकर उनके आदेशानुसार चलें, इसीमें कल्याण है। पर पुरुषके चरण स्पर्श और उनका ध्यान करना उचित नहीं है और इसका प्रायः उत्तम फल भी नहीं होता।

३९८. प्रश्न- सद्‌गुरुसे मन्त्र ग्रहण करनेकी प्रथा क्यों है?

उत्तर- मनुष्यका उद्धार होता है दो उपायोंसे--सद्‌गुरु प्रदत्त मंत्रके सम्यक् विधिवत् अनुष्ठानसे अथवा भगवत्कृपा-प्राप्त शक्तिसम्पन्न सद्‌गुरुकी तपःशक्तिसे। सम्भवतः इन्हीं दोनों कारणोंसे ईश्वरस्वरूप तत्त्वज्ञानी महापुरुषोंसे मन्त्र ग्रहण करनेकी प्रथा चली होगी।

३९९. प्रश्न- मन्त्रदानका क्या अर्थ है ?

उत्तर- मन्त्रदानका अर्थ मार्ग बदलना ही है, कान फूँकना नहीं।

४००. प्रश्न- कानमें मंत्र फूँकनेसे क्या शिष्यका उद्धार हो जाता है।

उत्तर- कानमें मन्त्र फूँकनेसे उद्धार नहीं हो जाता। जिनके हृदयमें नन्दनन्दनकी जगह धन और पार्थिव रूप बसा है ऐसे लोगोंके पैर पूजने और इनसे कानोंमें मन्त्र फूँकवानेमें सिवा हानिके तनिक भी लाभ नहीं है।

४०१. प्रश्न- गुरुसे वार्तालापका अवसर न मिलनेपर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर- हम गुरुको कुछ न कहें और गुरु भी कुछ न कहें तो भी गुरुका मौन व्याख्यान ही हमें तार देगा।

४०२. प्रश्न- श्रुतिने सद्गुरुके पास जानेकी आज्ञा क्यों दी ?

उत्तर- लोगोंके जीवनको लेकर खेलना साधारण बात नहीं है। यह बहुत ऊँचे अधिकारकी बात है। वस्तुतः परमात्माके रहस्यको सम्यक् प्रकार जाननेवाले महापुरुष ही सद्गुरु पदपर प्रतिष्ठित हो सकते हैं, इसीसे श्रुतिने 'श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ' गुरुके समीप जाकर उनसे सीखनेकी आज्ञा दी है। जो स्वयं अंधा है, वह दूसरे अन्धेको मार्ग कैसे दिखला सकता है।

४०३. प्रश्न- सद्गुरुको ईश्वरसे बढ़कर सेव्य क्यों कहा गया है ?

उत्तर- सद्गुरु ही गोविन्दको मिलाता है, सद्गुरु ही शिष्यके दुःखोंका अशेष हरण करता है, इसीलिये शिष्यकी दृष्टिमें सद्गुरु ईश्वरसे बढ़कर सेव्य है।

४०४. प्रश्न- गुरु और पुरोहितमें क्या अन्तर है ?

उत्तर- पुरोहितका कार्य है यजमानको धर्मपरायण रखकर उसका हित करना और गुरुका कार्य है शिष्यको बुरे मार्गसे हटाकर उसे भगवान्‌की ओर लगाना।

गुरु यथार्थमें वही, स्वयं हो जिसको प्रभुका तत्त्व-ज्ञान।
शम-दम-त्याग-समत्व-प्रेमकी जो हो पावन मूर्ति महान॥
निज आदर्श चरितकी द्युतिसे हरे शिष्यका तम-अज्ञान।
प्रभुकी ओर लगा, जो कर दे सहज समुज्ज्वल-जीवन-दान॥

(पद-रत्नाकर, पद सं० १३३३)